ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 130-132
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय (नारी–पात्र)

डॉ0 सुधा राय
एसो0 प्रो0– राजामोहन गर्ल्स पी0 जी0 कॉलेज, अयोध्या– फैजाबाद (उ0प्र0) भारत

जीवट साहित्यकार कथा शिल्पी शरत् चन्द्र चटर्जी पर परिचर्चा करते ही प्रथम क्षेणी के कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर जी की सर्वसम्मानित, पुरस्कृत कृति 'आवारा मसीहा' के पन्ने फड़फड़ाने लगते हैं, बिना उसके अध्ययन–अध्यापन के 'शरत' साहित्य एवं व्यक्तित्व आधा–अधूरा ही रहेगा स क्योंकि, यह जीवन भीतरी प्रकाश और बाहरी जीवन्त वातावरण का मापक है, इसके बिना संसार को नहीं जाना जा सकता स कारण लिखा है, एक बार स्वयं श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा था– "शरत्, तुम अपनी आत्मकथा लिखो स" उनका उत्तर था, गुरुदेव यदि मैं जनता कि मैं इतना बड़ा आदमी बनूँगा तो मैं किसी और प्रकार का जीवन जीता। यह व्यंग्य भी हो सकता है और विकट सत्य भी स अन्यत्र और कहा– "मैं आत्मकथा नहीं लिख सकता, क्योंकि न तो मैं इतना सत्यवादी हूँ और न इतना बहादुर ही, जितना एक आत्मकथा लेखक को होना चाहिए।

उपर्युक्त कथन साहित्य दृ समाज के लिए प्रश्न का उत्तर भी है और चुनौती भी स इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि शरत् जैसे साहित्यकार की जटिल प्रकृति को जानना नारियल की जटा जोड़ने जैसा दुर्धर्ष कार्य है स मोतीलाल की पत्नी शांत प्रकृति, निर्मल चरित्र और वृत्ति की महिला थीं स वह सुन्दर नहीं थी, परन्तु वैदुर्य मणि की तरह अन्तर के रूप से रूपसी निश्चय ही थीं, उनके सहज पतिव्रत्य और प्रेम की छाया में स्वप्नदर्शी यायावर पति की गृहस्थी चलने लगी स यहीं पर 15 सितम्बर 1876 ई० शुक्रवार की संध्या को एक पुत्र का जन्म हुआ स वह अपने माता पिता की दूसरी संतान थे स चार वर्ष पहले उनकी एक बहिन अनिला जन्म ले चुकी थी स माता–पिता ने बड़े चाव से नाम रखा शरत् चन्द्र स माँ का ऋण चुकाने के लिए कथाकार शरत् जरा भी तो कृपण नहीं हुए स लेकिन कैसी भी सरल और उदार नारी हो पति की अकर्मण्यता उसको ठेस पहुँचाती ही है स भुवन मोहिनी बहुत बार क्षुब्ध हो उठती, तब मोतीलाल चुपचाप घर से निकल जाते और देर तक बाहर ही रहते स 'शुभदा' के हारान बाबू की तरह।

विष्णु प्रभाकर जी ने 'आवारा मसीहा' में शैशवावस्था का जो चित्र खींचा हैय आज के भौतिकवादी मनुष्यों को सबक सीखाने के लिए पर्याप्त है दृ "शरत् चोर नहीं था , घर में बेहद कंगाली थी, पर उसने कभी अपनी चिन्ता नहीं की स वह वास्तव में राबिन–हुड के समान दुःसाहसी और परोपकारी था।

गाँव में ब्राह्मण की बाल विधवा बेटी थी नाम था उसका नीरू स बत्तीस साल तक की उम्र तक कोई कलंक उसे छू नहीं पाया था स सुशीला परोपकारिणी, धर्मशीला कर्मठ होने के नाते वह प्रसिद्ध थी, रोग में सेवा, दुःख में सांत्वना, अभाव में सहायता आवश्यकता पड़ने पर महरी के काम में संकोच नहीं करती स इसी कारण शरत् उसे दीदी कहकर बुलाता था , दीदी उसे बहुत प्यार करतीं थी स दोनों एक ही पर दुःख कातर जाति के व्यक्ति थे स ..... अचानक 32 वर्षीय उम्र में गाँव के स्टेशन पर परदेशी मास्टर ने उसके जीवन को कलंकित कर दिया और जाने कहाँ भाग खड़ा हुआ स गाँव वालों ने सब कुछ भूलकर उसे बहिष्कृत कर दिया स मरणासन्न स्थिति में किसी ने एक बूंद पानी डालने की हिम्मत नहीं की स शरत् को आज्ञा भी वहाँ न जाए, लेकिन उसने क्या कभी कोई आज्ञा मानी थी, रात में छिपकर वहाँ जाता हाथ–पैर सहलाता, खिलाता–पिलाता स वह अपने को अपराधी मानती थी स जब मरी तो किसी ने उसकी लाश को छूआ तक नहीं स यह था बाल सुलभ परोपकार।

बच्चपन में ही शरत् को हुक्का पीने की आद्त पड़ने लगी इसकी शिकायत धीरू ने माँ से की माँ के हाथों से शरत् को मार खानी पड़ी, लेकिन दोनों की मित्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ा स बहुत दिन बाद इस संगिनी को आधार बनाकर शरत् ने अपने कई उपन्यासों की नायिकाओं का सृजन किया 'देवदास' की पारो , 'बड़ी दीदी' की माधवी और 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी ये सब धीरू का विकसित और विराट रूप है स विशेषकर 'देवदास' तो जैसे अपने बच्चपन को ही मूर्तिरूप दिया स विलासी कहानी के कायस्थ मृतुञ्जय को सपेरा बनते देखा था , कारण बड़े बाग के लालच में उसका बड़ा चाचा परम शत्रु था स मृतुञ्जय इसी चिन्ता में तड़प दृ तड़प कर मर जाता किन्तु बूढ़ा ओझा और उसकी पुत्री विलासी सेवा दृ टहल के बीच उसके बहुत करीब आ गयी स इसका परिणाम मृतुञ्जय को गाँव छोड़कर जाना पड़ा स शरत् भी छिपकर जाता साँप पकड़ने, जहर उतारने का मन्त्र सीखता स एक दिन जहरीला नाग पकड़ते मृतुञ्जय को नाग ने डस लिया सारे प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए उसकी मौत के ठीक सात दिन मौन रहकर विलासी ने आत्महत्या कर ली स वर्षों बाद कथा शिल्पी ने मनोदशायों

अनुरूपी लेखक

व्यक्त किया–

"विलासी का जिन लोगों ने मजाक उड़ाया था , मैं जनता हूँ , वे सभी लोग साधु, गृहस्थ और साध्वी गृहणियां थीं स अक्षय स्वर्ग और सती लोक उन्हें मिलेगा, यह भी मैं जनता हूँ, पर वह सपेरे की लड़की जब एक पीड़ित शैय्यागत रोगी को तिल–तिल कर जीत रहीं थी, उसके उस समय के गौरव का एक कण भी शायद आज तक उनमें से किसी ने आँखों से नहीं देखा ..... शास्त्रों के अनुसार निश्चय ही वह नरक गयी है, परन्तु कहीं जाय जब मेरा अपना जाने का समय आयेगा ..... तब मैं वैसे किसी एक नरक में जाने के प्रस्ताव से पीछे नहीं हटूँगा। इसी संवेदन ने उन्हें कहानीकार और उपन्यासकार बना दिया स ऐसे दृश्यों का उनके जीवन में कोई अन्त नहीं।

एक दिन सुप्रसिद्ध सालीसीटर गणेश चन्द्र कहीं से कलकत्ता लौट रहे थे स देखा उनके डिब्बे में एक 13 –14 वर्ष का लड़का चढ़ आया स स्नेह से पास बुलाया पता लगा की वह उनके मित्र का नाती है स क्रांतिकारी विपिनबिहारी गांगुली के पिता अक्षय नाथ ही उनके मित्र थे स वह रिश्ते में शरत् के नाना लगते थे स उन्होंने ने शरत् को उनके नाना के घर भेज दिया। आगे पुरी की यात्रा करते समय एक गृह स्वामिनी जो शरत् से आयु में बड़ी थी, और उसे बहुत प्यार करती थी स अचानक बीमार हुई, पति दूर काम करते थे उसकी सेवा करके आगे बढ़े, उसी समय एक विधवा वहाँ से निकली शरत् ने पानी माँगा, कारण चलते चलते उसे बुखार आ गया था, करुणा द्रवित हो उस विधवा ने सेवा की और घर ले गयी स वहाँ विधवा का देवर व बहनोई था स देवर उसे अपना बनाना चाहता था, और बहनोई अपना अधिकार जताना चाहता था, लेकिन शरत् को लगा वो किसी के साथ नही रहना चाहती, क्योंकि उसने शरत् से कहा तं ठीक हो गये मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी स इसके पीछे मात्र मुक्ति की चाह थी स किन्तु अभी थोड़ी ही दूर गये होंगे की दोनों प्रेमी वहाँ आ पहुँचे उनहोंने शरत् को जी भर पीटा और चीखती चिल्लाती विधवा को मारते–पीटते वापस ले गये स फिर क्या हुआ शरत् नही जान सका ? लेकिन वह समझ गया कि एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी लुच्चे–लफंगों में एका होती है, भले लोग अधिक होते हुए भी छिटके रहतें हैं स प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' का आधार ये घटनाएँ हीं हैं ।
अपने पारिवारिक भयानक दरिद्रता के चित्र 'शुभदा' में खींचे हैं स इसी यातना के नीव में उनकीं साहित्य साधना का बीजारोण हुआ।

4 अगस्त 1928 को 'आंधरो–आंलो' साधारण कहानी का फिल्मांकन हुआ , उस समय सवाक् फिल्म का प्रचलन नहीं था ,वह निर्वाक् फिल्माया गया। उन्होंने स्वयं कहा– "मेरे साहित्यिक जीवन के चार पर्व हैं प्रथम पर्व में मैंने 'बड़ी दीदी' और 'देवदास' आदि लिखे वह युग था, यौवन के उच्छ्वास और भीषण भावुकता का स दूसरे पर्व में असंयत भीषण भावुकता संयत सम्वेदन में बदल जाती है– परिणीता, रामेर सुमती, चरित्रहीन, श्रीकांत आदि रचनाएँ जीवन की नुभूति से परिव्याप्त है प तीसरे पर्व में कला प्रौढ़ हो चुकी है, 'दत्ता' और 'गृहदाह' जैसी कृतियाँ इसी युग की दें हैं स अंतिम पर्व मानों नवयुग की चुनौती स्वीकार करते हैं, उनमे शक्ति है विचार है– 'पाथेर दाबी', शेष प्रश्न ने क्रांतिकारियों को पागल बना दिया था, उसकी लोकप्रियता की कल्पना नहीं की जा सकती स गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने नारी मात्र को स्नेह दिया पर सहानुभूति दी शरत् चन्द्र ने ।

'शुभदा' सुरेन्द्रनाथ पूछते हैं –"क्यों क्या विधवा से विवाह नही करना चाहिये ? तो मालती का उत्तर है दृ विधवा से करना चाहिए मगर वैश्या से नहीं स" शरत् शास्त्र को स्वीकार करते हैं परन्तु उसे ह्रदय के ऊपर से नहीं मानते हैं प शरत् साहित्य में नारी जाया, जन्ननी, पतिता, और विप्पलवी भी है लेकिन बाहर से वे एक दिखाई दे कर भी वे एक नहीं हैं स राज लक्ष्मी की त्रासदी इतनी गूढ़ और रहस्यमय है कि उसे समझ पाना असंभव है स उसका अंतर्विरोध ही उसकी सफलता है, उसकी विषाद में ही शिल्पी की चेतना मूर्त हुई है स स्त्री–पुरुष का मिलन तभी तक सत्य है, जब – तक वह पति–पत्नी की प्रसन्नता का कारण बनता है स जिस क्षण लाभ से हानि का पलड़ा भरी हो जाता है, पति जब एक मात्र बेंत के जोर से स्त्री को समस्त अधिकार से वंचित कर देता है उसी क्षण वह स्वतः समाप्त हो जाता है स यह है नारी विषयक अवधारणा और सजगता ।

इला चन्द्र जोशी ने लिखा है –" जो साधारण से साधारण स्त्रियाँ भी उनके सम्पर्क में आईं उनके प्रति शरत् के मन में करुणा संवेदना, सह्रदयता की भावना उमड़ती रही स कभी भी किसी नारी की आर्थिक या सह्रदया जनित विवशता से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृति उनके मन में नहीं जागी स यह स्वयं शरत् ने मुझसे कही थी स उनके निकट और घनिष्ट सम्पर्क में आने के कारण स्वयं मुझे भी उनके स्वाभाव और व्यवहार के अध्ययन से अनुभव हुआ उससे उनकी बातें प्रत्यक्ष रूप में प्रमाणित होती हैं ।

16 जनवरी रविवार सन् 1938 पौष पूर्णिमा का दिन था स सवेरे के दस बजे भारत के अपराजेय कथा–शिल्पी , जनप्रिय साहित्यिक सम्राट ने अंतिम साँस ली, उनकी आयु थी इकसठ वर्ष चार मास स इस उम्र के पड़ाव तक मसीहा ने

वह कार्य किया , जो शतायु हो कर भी व्यक्ति नहीं कर सकता स सारे बंगाल में हाहाकार मच गया स नर–नारी हजारों की तादात में श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे– उनकी बातों को याद कर रहे थे – "मेरा जीवन अंततः मानो एक उपन्यास ही है स इस उपन्यास में सब कुछ किया पर छोटा काम नहीं किया स जब मरूँगा निर्मल खाता छोड़ कर जाऊँगा स उसके बीच स्याही का दाग कहीं नहीं होगा"। सच है उसका परिणाम 'आवारा– मसीहा' बन गया।

मुक्त कंठ से सभी ने उनकी प्रतिभा का अभिनंदन किया स महाप्रयाण पर देशवासियों के साथ मर्म वेदना का अनुभव करते हुए कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ने शोक सन्तप्त होकर लिखा–

जांहार अमर स्थान प्रेमेर आसने , क्षति तार क्षति नय मृत्युर दृ शासने।

देशेर माटिर थेके निलो जारे हरि , देशेर ह्रदय ताके राखि येछे बरि।

अर्थात जिनका अमर स्थान प्रेम के आसन पर है, मृत्यु उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकती स भौतिक दृष्टि से उन्हें देश से जुदा कर दिया गया है, लेकिन उसके ह्रदय में उसका स्थान सदा बना रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आवारा– मसीहा – विष्णु प्रभाकर।
2. आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय की डायरी के अंश।
3. दैनिक जागरण , स्वतंत्र भारत का अंश
4. चरित्रहीन , श्रीकान्त उपन्यास – शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय।
5. विलासी कहानी – शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय।

*****